अध्याय पाँच

विधायिका

11103CH05

परिचय

हम भारत में चुनावों का महत्त्व और चुनावों के लिए अपनाई गई प्रक्रिया का अध्ययन पिछले अध्यायों में कर चुके हैं। विधायिकाएँ जनता द्वारा निर्वाचित होती हैं और जनता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती हैं। इस अध्याय में आप पढ़ेंगे कि निर्वाचित विधायिकाएँ कैसे काम करती हैं और लोकतांत्रिक सरकार को बनाए रखने में कैसे मदद करती हैं। आप भारत में संसद और राज्यों की विधायिकाओं की संरचना और कार्यों तथा लोकतांत्रिक शासन में उनके महत्त्व का अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी होगी:

- *विधायिका का क्या महत्त्व है?*
- *संसद के कार्य और शक्तियाँ क्या हैं?*
- *कानून कैसे बनता है?*
- *संसद कार्यपालिका को कैसे नियंत्रित करती है?*
- *संसद अपने ऊपर कैसे नियंत्रण रखती है?*

हमें संसद क्यों चाहिए?

विधायिका केवल कानून बनाने वाली संस्था नहीं है। इसके अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों में से कानून बनाना भी एक कार्य है। यह सभी लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रियाओं का केंद्र है। संसद में बहुत-से दृश्य देखने को मिलते हैं। सदन में बहस, बहिर्गमन, विरोध, प्रदर्शन, सर्वसम्मति, सरोकार और सहयोग आदि इसे अत्यंत जीवंत रखते हैं। ये सभी बहुत ही महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों को पूरा करते हैं। दरअसल वास्तविक प्रतिनिधित्व वाली कुशल और प्रभावी विधायिका के बिना सच्चे लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती। विधायिका जन-प्रतिनिधियों का जनता के प्रति उत्तरदायित्व सुनिश्चित करती है। यह वास्तव में प्रतिनिधिक लोकतंत्र का आधार है।

इसके बावजूद अधिकांश लोकतंत्रों में कार्यपालिका के मुकाबले विधायिकाएँ अपना महत्त्व खोती जा रही हैं। भारत में भी मंत्रिमंडल नीति निर्माण की पहल करता है, शासन का एजेंडा तय करता है और उसे लागू करता है। इससे कुछ आलोचकों को यह कहने का मौका मिल गया कि संसद का ह्रास हो गया है। लेकिन अत्यंत शक्तिशाली मंत्रिमंडल को भी विधायिका में बहुमत की आवश्यकता होती है। एक सशक्त नेता को भी संसद का सामना करना पड़ता है और संसद को अपने जवाबों से संतुष्ट करना पड़ता है। यह हमें संसद की लोकतांत्रिक क्षमता का एहसास कराता है। यह वाद-विवाद का सबसे लोकतांत्रिक और खुला मंच है। अपनी संरचनात्मक विशेषता के कारण यह सरकार के अन्य सभी अंगों में सबसे ज़्यादा प्रतिनिधिक है। और फिर, इसके पास सरकार (कार्यपालिका) का चयन करने और उसे बर्खास्त करने की शक्ति भी है।

खुद करें—खुद सीखें

इन समाचारों पर विचार करें और यह सोचें कि यदि विधायिकाएँ न होतीं, तो क्या होता? प्रत्येक रिपोर्ट को पढ़ने के बाद बताएँ कि कैसे कार्यपालिका को नियंत्रित करने में विधायिका सफल या असफल रही –

- **28 फरवरी 2002:** केंद्रीय वित्त मंत्री जसवंत सिंह ने केंद्रीय बजट प्रस्तावों में 50 किलोग्राम यूरिया खाद की बोरी की कीमत 12 रुपए बढ़ाने तथा दो अन्य खादों के दामों में भी कुछ वृद्धि करने के प्रस्ताव की घोषणा की। इससे खाद के दामों में 5 प्रतिशत वृद्धि हुई। यूरिया खाद के वर्तमान मूल्य 4830 रु. प्रति टन पर 80 प्रतिशत सब्सिडी है।
- **11 मार्च 2002:** विपक्ष के जबर्दस्त विरोध के कारण वित्तमंत्री को खाद के दामों में वृद्धि के प्रस्ताव को वापस लेना पड़ा।

(द *हिन्दू*, 12 मार्च 2002)

- **4 जून 1998:** को लोक सभा में यूरिया खाद और पेट्रोलियम पदार्थों के दामों में वृद्धि को लेकर विवादास्पद स्थिति बन गई। पूरे विपक्ष ने सदन से बहिर्गमन किया। इस मुद्दे पर सदन में दो दिनों तक गर्मा–गर्मी रही। वित्त मंत्री ने अपने बजट प्रस्तावों में यूरिया खाद के दामों में मात्र 50 पैसे प्रति किलोग्राम की वृद्धि का प्रस्ताव किया था जिससे उस पर सब्सिडी कम की जा सके। इस विरोध के परिणामस्वरूप, वित्त मंत्री यशवन्त सिन्हा को मूल्य वृद्धि के प्रस्तावों को वापस लेना पड़ा।

  (*हिन्दुस्तान टाइम्स*, 4–5 जून 1998)

- **22 फरवरी 1983:** एक ऐतिहासिक कदम उठाते हुए आज लोक सभा ने सर्वसम्मति से सरकारी काम–काज को स्थगित करने तथा असम पर बहस को प्राथमिकता देने का निर्णय लिया। गृहमंत्री पी सी सेठी ने बयान दिया "असम में रहने वाले सभी समुदायों और समूहों के बीच सद्‌भाव कायम करने के लिए मैं अलग–अलग विचार और नीतियों से प्रतिबद्धता रखने वाले आप सभी सदस्यों का सहयोग चाहता हूँ। यह समय विवाद का नहीं वरन घाव पर मरहम लगाने का है।"

  (*हिन्दुस्तान टाइम्स*, 22 फरवरी 1983)

- लोक सभा में काँग्रेस सदस्यों ने आंध्र प्रदेश में हरिजनों के उत्पीड़न के प्रति विरोध जताया।

  (द *हिन्दू*, 3 मार्च 1985)

संसद में दो सदनों की क्या आवश्यकता है?

हमारी राष्ट्रीय विधायिका का नाम संसद है। राज्यों की विधायिकाओं को विधान मंडल कहते हैं। भारतीय संसद में दो सदन हैं। जब किसी विधायिका में दो सदन होते हैं, तो उसे द्वि–सदनात्मक विधायिका कहते हैं। भारतीय संसद के एक सदन को राज्य सभा तथा दूसरे को लोक सभा कहते हैं। संविधान ने राज्यों को एक–सदनात्मक या द्वि–सदनात्मक विधायिका स्थापित करने का विकल्प दिया है। अब केवल सात राज्यों में ही द्वि–सदनात्मक विधायिका है।

विविधताओं से परिपूर्ण बड़े देश प्राय: द्वि–सदनात्मक राष्ट्रीय विधायिका चाहते हैं, ताकि वे अपने समाज के सभी वर्गों और देश के सभी क्षेत्रों या भागों को समुचित प्रतिनिधित्व दे सकें। द्वि–सदनात्मक विधायिका का एक और लाभ यह है कि संसद के प्रत्येक निर्णय पर दूसरे सदन में पुनर्विचार हो जाता है। एक सदन द्वारा लिया गया

भारत

द्वि-सदनात्मक विधायिका वाले प्रांत

द्वि-सदनात्मक विधायिका वाले प्रांत

आंध्र प्रदेश
बिहार
जम्मू और कश्मीर
कर्नाटक
महाराष्ट्र
तेलंगाणा
उत्तर प्रदेश

प्रत्येक निर्णय दूसरे सदन के निर्णय के लिए भेजा जाता है। इसका मतलब यह कि प्रत्येक विधेयक और नीति पर दो बार विचार होता है। इससे हर मुद्दे को दो बार जाँचने का मौका मिलता है। यदि एक सदन जल्दबाज़ी में कोई निर्णय ले लेता है तो दूसरे सदन में बहस के दौरान उस पर पुनर्विचार संभव हो पाता है।

> ... उच्च सदन पुनर्विचार करने के उपयोगी काम को अंजाम दे सकता है। और ... इसके विचारों का तो महत्त्व हो सकता है पर मतों का नहीं ... जो लोग सक्रिय राजनीति की उठा-पटक से दूर हैं वे ... निचले सदन को सलाह दे सकते हैं।
>
> पूर्णिमा बनर्जी
> संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड IX, पृष्ठ 33, 30 जुलाई 1949

राज्य सभा

संसद के प्रत्येक सदन में प्रतिनिधित्व का आधार अलग-अलग है। राज्य सभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। इसका निर्वाचन अप्रत्यक्ष विधि से होता है। किसी राज्य के लोग राज्य की विधान सभा के सदस्यों को चुनते हैं। फिर, राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्य, राज्य सभा के सदस्यों को चुनते हैं।

द्वितीय सदन (राज्य सभा) में प्रतिनिधित्व के लिए दो सिद्धांतों का प्रयोग किया जा सकता है। एक तरीका यह हो सकता है कि देश के सभी क्षेत्रों को असमान आकार और जनसंख्या के बावजूद द्वितीय सदन में समान प्रतिनिधित्व दिया जाय। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि देश के विभिन्न क्षेत्रों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में असमान प्रतिनिधित्व दिया जाय। अर्थात्, द्वितीय सदन में ज़्यादा जनसंख्या वाले क्षेत्रों को ज़्यादा और कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों को कम प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

अमेरिका के द्वितीय सदन (सीनेट) में प्रत्येक राज्य को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। यह सभी राज्यों में समानता स्थापित करता है। लेकिन इसका अर्थ यह भी है कि छोटे राज्यों को बड़े राज्यों के बराबर ही प्रतिनिधित्व मिलेगा। हमारी राज्य सभा के

लिए इस अमेरिकी प्रतिनिधित्व प्रणाली से अलग तरीका अपनाया गया है। संविधान की चौथी अनुसूची में प्रत्येक राज्य से निर्वाचित होने वाले सदस्यों की संख्या निर्धारित कर दी गई है।

यदि हम राज्य सभा में प्रतिनिधित्व के लिए 'अमेरिका की समान-प्रतिनिधित्व प्रणाली' का प्रयोग करें तो क्या होगा? 1998.12 लाख (लगभग 19.98 करोड़) जनसंख्या वाले उत्तर प्रदेश को 6.10 लाख जनसंख्या वाले सिक्किम के बराबर ही प्रतिनिधित्व मिलेगा। संविधान निर्माता ऐसी विसंगति से बचना चाहते थे। यहाँ ज़्यादा जनसंख्या वाले राज्यों को अधिक और कम जनसंख्या वाले राज्यों को कम प्रतिनिधित्व दिया गया है। इस प्रकार, ज़्यादा जनसंख्या वाले उत्तर प्रदेश को 31 तथा छोटे और कम जनसंख्या वाले सिक्किम को राज्य सभा में एक सीट दी गयी है।

राज्य सभा के सदस्यों को 6 वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है। उन्हें दुबारा निर्वाचित किया जा सकता है। राज्य सभा के सभी सदस्य अपना कार्यकाल एक साथ पूरा नहीं करते। प्रत्येक दो वर्ष पर राज्य सभा के एक तिहाई सदस्य अपना कार्यकाल पूरा करते हैं और इन एक तिहाई सीटों के लिए चुनाव होते हैं। इस तरह राज्य सभा कभी भी पूरी तरह भंग नहीं होती। अतः इसे संसद के स्थायी सदन के रूप में जानते

जर्मनी में द्वि-सदनात्मकता

जर्मनी में विधायिका द्वि-सदनात्मक है। दोनों सदनों को बुंदेस्टैग (फेडरल एसेंबली) और बुंदेसरैट (फेडरल कौंसिल) कहते हैं। एसेंबली का चुनाव प्रत्यक्ष और समानुपातिक प्रतिनिधित्व की एक मिली-जुली जटिल प्रक्रिया से चार वर्ष के लिए होता है।

जर्मनी के 16 संघीय राज्यों को फेडरल कौंसिल में प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। बुंदेसरैट की 69 सीटें राज्यों में जनसंख्या के अनुपात में बाँट दी जाती हैं। ये सभी सदस्य सामान्य रूप से राज्य सरकार में मंत्री होते हैं और उनका चुनाव नहीं होता वरन् वे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। जर्मनी के कानून के अनुसार इन सभी सदस्यों को एक टीम की भाँति अपने राज्य सरकार के निर्देशों के अनुसार वोट देना होता है। कभी-कभी, राज्यों में गठबंधन सरकार होने पर इन सदस्यों में सहमति नहीं बन पाती तब वे मतदान में भाग नहीं ले पाते।

बुंदेसरैट सभी कानूनी प्रस्तावों पर मतदान नहीं करती, लेकिन वे सभी नीतिगत मुद्दे जिन पर संघीय राज्यों को समवर्ती-शक्तियाँ प्राप्त हैं और जिन विषयों में संघीय निर्देशों को लागू कराने की ज़िम्मेदारी राज्य सरकारों पर हो, वे सभी मुद्दे बूंदेसरैट द्वारा पारित होने चाहिए। बूंदेसरैट ऐसे विधेयकों को 'वीटो' भी कर सकती है।

हैं। इस व्यवस्था का लाभ यह है कि जब लोक सभा भंग होती है और चुनाव होने बाकी होते हैं, तब राज्य सभा की बैठक बुलाई जा सकती है और ज़रूरी मामलों को निपटाया जा सकता है।

निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त राज्य सभा में 12 मनोनीत सदस्य होते हैं। जिन्होंने साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा के क्षेत्र में विशेष उपलब्धि हासिल की हो उन्हें राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाता है।

खुद करें — खुद सीखें

विभिन्न राज्यों के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या का पता लगाएँ। एक चार्ट बनाकर 2011 की जनगणना के अनुसार प्रत्येक राज्य की जनसंख्या तथा उस राज्य से निर्वाचित राज्य सभा के सदस्यों की संख्या दिखाएँ।

मुझे समझ में नहीं आता कि खिलाड़ी, कलाकार और वैज्ञानिकों को मनो-नीत करने का प्रावधान क्यों है? वे किसका प्रतिनिधित्व करते हैं? और क्या वे वास्तव में राज्य सभा की कार्यवाही में कुछ खास योगदान दे पाते हैं?

लोक सभा

लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिए जनता सीधे सदस्यों को चुनती है। इसे प्रत्यक्ष निर्वाचन कहते हैं। लोक सभा चुनावों के लिए पूरे देश को और विधान सभा चुनावों के लिए किसी राज्य को लगभग समान जनसंख्या वाले निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाता है; चुनाव 'सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार' के आधार पर होता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के मत का मूल्य दूसरे व्यक्ति के मत के मूल्य के बराबर होता है। इस समय लोक सभा के 543 निर्वाचन क्षेत्र हैं। यह संख्या 1971 की जनगणना से चली आ रही है।

लोक सभा के लिए सदस्यों को 5 वर्ष के लिए चुना जाता है। लेकिन यदि कोई दल या दलों का गठबंधन सरकार न बना सके अथवा प्रधान मंत्री राष्ट्रपति को लोक सभा भंग कर नए चुनाव कराने की सलाह दे, तो लोक सभा को 5 वर्ष के पहले भी भंग किया जा सकता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- क्या आप मानते हैं कि राज्य सभा की संरचना ने भारत में राज्यों की स्थिति को संरक्षित किया है?
- क्या राज्य सभा के चुनाव अप्रत्यक्ष न होकर प्रत्यक्ष होने चाहिए? इससे क्या फायदा या नुकसान होगा?
- 1971 की जनगणना से लोक सभा में सीटों की संख्या नहीं बढ़ी है। क्या आप मानते हैं कि इसे बढ़ाना चाहिए? इसके लिए क्या आधार होना चाहिए?

संसद क्या करती है?

विधायिकाओं के क्या कार्य हैं? क्या संसद के दोनों सदनों के कार्य समान हैं? क्या दोनों सदनों की शक्तियों में कोई फर्क है?

कानून बनाने के अतिरिक्त, संसद के अन्य अनेक कार्य हैं। आइए इन कार्यों की सूची बनाएँ–

- **विधायी कामकाज–**संसद पूरे देश या देश के किसी भाग के लिए कानून बनाती है। कानून बनाने वाली सर्वोच्च संस्था होने के बावजूद संसद प्रायः कानूनों को केवल स्वीकृति देने मात्र का काम करती है।
  विधेयकों को तैयार करने का वास्तविक काम तो किसी मंत्री के निर्देशन में नौकरशाही करती है। विधेयक का उद्देश्य और संसद में उसे प्रस्तुत करने का समय मंत्रिमंडल तय करता है। कोई भी महत्त्वपूर्ण विधेयक बिना मंत्रिमंडल की स्वीकृति के संसद में पेश नहीं किया जाता। संसद के अन्य निजी सदस्य भी कोई विधेयक प्रस्तुत कर सकते हैं, पर बिना सरकार के समर्थन के ऐसे विधेयकों का पास होना संभव नहीं।
- **कार्यपालिका पर नियंत्रण तथा उसका उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना–** संसद का सबसे महत्त्वपूर्ण काम कार्यपालिका को उसके अधिकार क्षेत्र में सीमित रखने तथा जनता (जिसने उसे चुना है) के प्रति उसका उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना है। इस अध्याय में आगे हम इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे।
- **वित्तीय कार्य–**सरकार को बहुत-से काम करने पड़ते हैं। इन कामों पर धन

खर्च होता है। यह धन कहाँ से आता है? प्रत्येक सरकार कर-वसूली के द्वारा अपने संसाधनों को बढ़ाती है। लेकिन, लोकतंत्र में संसद कराधान तथा सरकार द्वारा धन के प्रयोग पर नियंत्रण रखती है। यदि भारत सरकार कोई नया कर प्रस्ताव लाए तो उसे संसद की स्वीकृति लेनी पड़ती है। संसद की वित्तीय शक्तियाँ उसे सरकार के कार्यों के लिए धन उपलब्ध कराने का अधिकार देती हैं। सरकार को अपने द्वारा खर्च किए गए धन का हिसाब तथा प्रस्तावित आय का विवरण संसद को देना पड़ता है। संसद यह भी सुनिश्चित करती है कि सरकार न तो गलत खर्च करे और न ही ज़्यादा खर्च करे। संसद यह सब बजट और वार्षिक वित्तीय वक्तव्य के माध्यम से करती है।

कार्टून बूझें
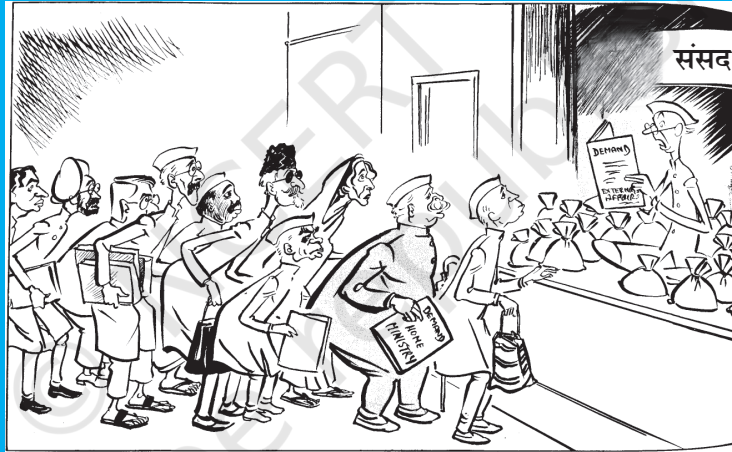
3 अप्रैल 1955

संसद एक हाकिम है और यहाँ मंत्रिगण बड़े दीन-हीन लग रहे हैं। विभिन्न मंत्रालयों को धन आबंटित करने की संसद की शक्ति का यह परिणाम है।

- **प्रतिनिधित्व**–संसद देश के विभिन्न क्षेत्रीय, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक समूहों के अलग-अलग विचारों का प्रतिनिधित्व करती है।
- **बहस का मंच**–संसद देश में वाद-विवाद का सर्वोच्च मंच है। विचार-विमर्श करने की उसकी शक्ति पर कोई अंकुश नहीं है। सदस्यों को किसी भी विषय पर निर्भीकता से बोलने की स्वतंत्रता है। इससे संसद राष्ट्र के समक्ष आने वाले किसी एक या हर मुद्दे का विश्लेषण कर पाती है। यह विचार-विमर्श हमारी लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया की आत्मा है।

- **संवैधानिक कार्य**–संसद के पास संविधान में संशोधन करने की शक्ति है। संसद के दोनों सदनों की संवैधानिक शक्तियाँ एक समान हैं। प्रत्येक संविधान संशोधन का संसद के दोनों सदनों के द्वारा एक विशेष बहुमत से पारित होना ज़रूरी है।
- **निर्वाचन संबंधी कार्य**–संसद चुनाव संबंधी भी कुछ कार्य करती है। यह भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव करती है।
- **न्यायिक कार्य**–भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाए जाने के प्रस्तावों पर विचार करने के कार्य संसद के न्यायिक कार्य के अंतर्गत आते हैं।

राज्य सभा की शक्तियाँ

ऊपर हमने संसद द्वारा किए जाने वाले कार्यों का अध्ययन किया। लेकिन, द्विसदनात्मक विधायिका में दोनों सदनों की शक्तियों में कुछ अंतर होता है। नीचे के दोनों चार्टों को ध्यान से देखें। एक में लोक सभा और दूसरे में राज्य सभा की शक्तियों की सूची दी गई है।

लोक सभा की शक्तियाँ–

- संघ सूची और समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाती है। धन विधेयकों और सामान्य विधेयकों को प्रस्तुत और पारित करती है।
- कर-प्रस्तावों, बजट और वार्षिक वित्तीय वक्तव्यों को स्वीकृति देती है।
- प्रश्न पूछ कर, पूरक प्रश्न पूछ कर, प्रस्ताव लाकर और अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से कार्यपालिका को नियंत्रित करती है।
- संविधान में संशोधन करती है।
- आपात्काल की घोषणा को स्वीकृति देती है।
- राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव करती है तथा उन्हें और सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटा सकती है।
- समिति और आयोगों का गठन करती है और उनके प्रतिवेदनों पर विचार करती है।

राज्य सभा की शक्तियाँ–

- सामान्य विधेयकों पर विचार कर उन्हें पारित करती है और धन विधेयकों में संशोधन प्रस्तावित करती है।
- संवैधानिक संशोधनों को पारित करती है।
- प्रश्न पूछ कर तथा संकल्प और प्रस्ताव प्रस्तुत करके कार्यपालिका पर नियंत्रण करती है।
- राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव में भागीदारी करती है तथा उन्हें और सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटा सकती है। उपराष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव केवल राज्य सभा में ही लाया जा सकता है।
- यह संसद को राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दे सकती है।

राज्य सभा की विशेष शक्तियाँ

आप जानते हैं कि राज्य सभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था है। इसका उद्देश्य राज्य के हितों (शक्तियों) का संरक्षण करना है। इसलिए, राज्य के हितों को प्रभावित करने वाला प्रत्येक मुद्दा इसकी सहमति और स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि केंद्र सरकार राज्य सूची के किसी विषय (जिस पर केवल राज्य की विधान सभा कानून बना सकती है) को, राष्ट्र हित में, संघीय सूची या समवर्ती सूची में हस्तांतरित करना चाहे, तो उसमें राज्य सभा की स्वीकृति आवश्यक है। इस प्रावधान से राज्य सभा की शक्ति बढ़ती है। लेकिन अनुभव के आधार पर तो यही लगता है कि राज्य सभा के सदस्य अपने राज्यों से अधिक अपने-अपने दलों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

लोक सभा की विशेष शक्तियाँ–कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं जिनका प्रयोग केवल लोक सभा ही कर सकती है। केवल लोक सभा में ही धन विधेयक प्रस्तुत किए जा सकते हैं और वही उसे संशोधित या अस्वीकृत कर सकती है। मंत्रिपरिषद् केवल लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है, राज्य सभा के प्रति नहीं। अतः राज्य सभा सरकार की आलोचना तो कर सकती है पर उसे हटा नहीं सकती।

तो लोकसभा का खजाने पर नियंत्रण है! इसलिए वह ज़्यादा शक्तिशाली है।

क्या आप बता सकते हैं कि ऐसा क्यों? राज्य सभा को जनता नहीं बल्कि विधायक चुनते हैं। अतः संविधान ने राज्य सभा को लोक सभा के बराबर शक्तियाँ नहीं दीं। संविधान द्वारा अपनायी गई लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता के पास अंतिम शक्ति होती है। इस तर्क के अनुसार जनता के द्वारा प्रत्यक्ष विधि से निर्वाचित प्रतिनिधियों के पास ही सरकार को हटाने और वित्त पर नियंत्रण रखने की शक्ति होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, सामान्य और संवैधानिक विधेयकों को पारित करने, राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने तथा उपराष्ट्रपति हो हटाने आदि के संबंध में लोक सभा और राज्य सभा की शक्तियाँ समान हैं।

संसद कानून कैसे बनाती है?

संसद का प्रमुख कार्य अपनी जनता के लिए कानून बनाना है। कानून बनाने के लिए एक निश्चित प्रक्रिया अपनाई जाती है। कानून बनाने की विधियों में से कुछ का उल्लेख संविधान में किया गया है, लेकिन कानून बनाने की कुछ विधियाँ कालक्रम में लगातार पालन किए जाने के कारण स्वीकार कर

ली गई हैं। कानून बनने की प्रक्रिया में किसी विधेयक को कई अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। इन अवस्थाओं पर गौर करें। आपको साफ-साफ पता लगेगा कि कानून बनाने की प्रक्रिया तकनीकी और कठिन है।

प्रस्तावित कानून के प्रारूप को विधेयक कहते हैं। विधेयक कई तरह के हो सकते
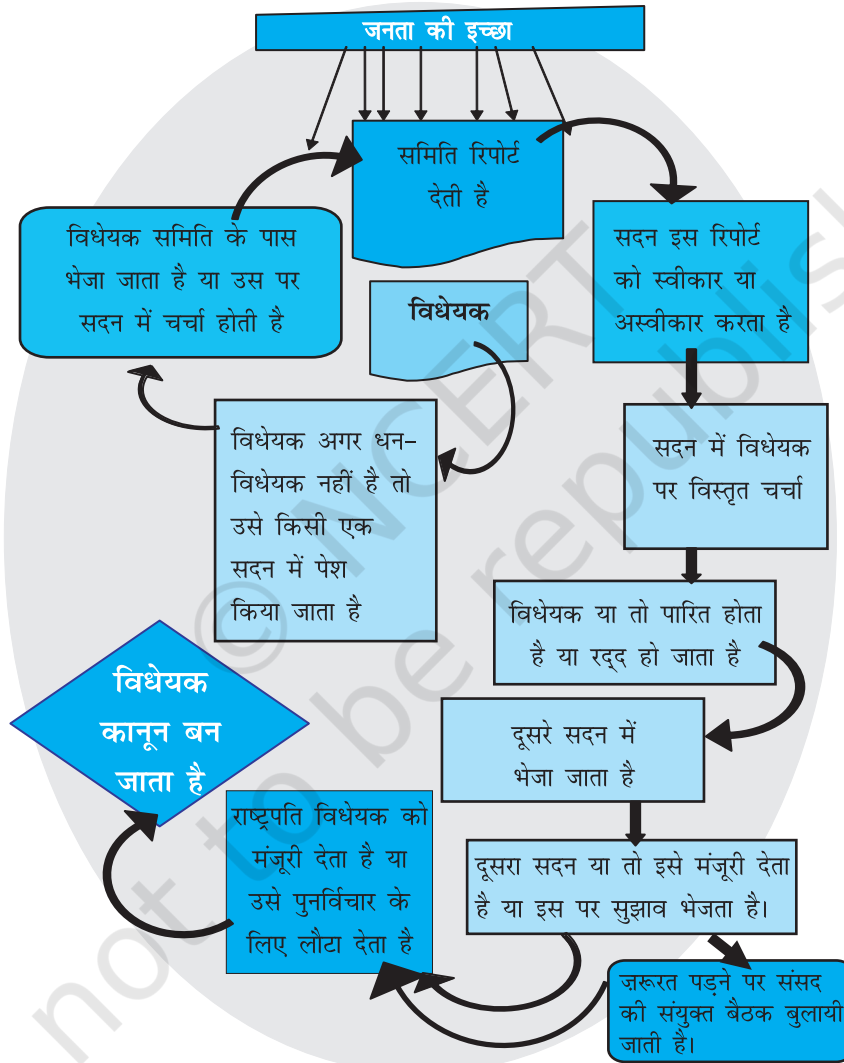
हैं। मंत्री के अतिरिक्त कोई और सदस्य विधेयक पेश करे तो ऐसे विधेयक को 'निजी सदस्यों का विधेयक' कहते हैं। मंत्री के द्वारा प्रस्तुत विधेयक को सरकारी विधेयक कहते हैं। विधेयक जिन चरणों से होकर पारित होता है, आइए उसे देखें।
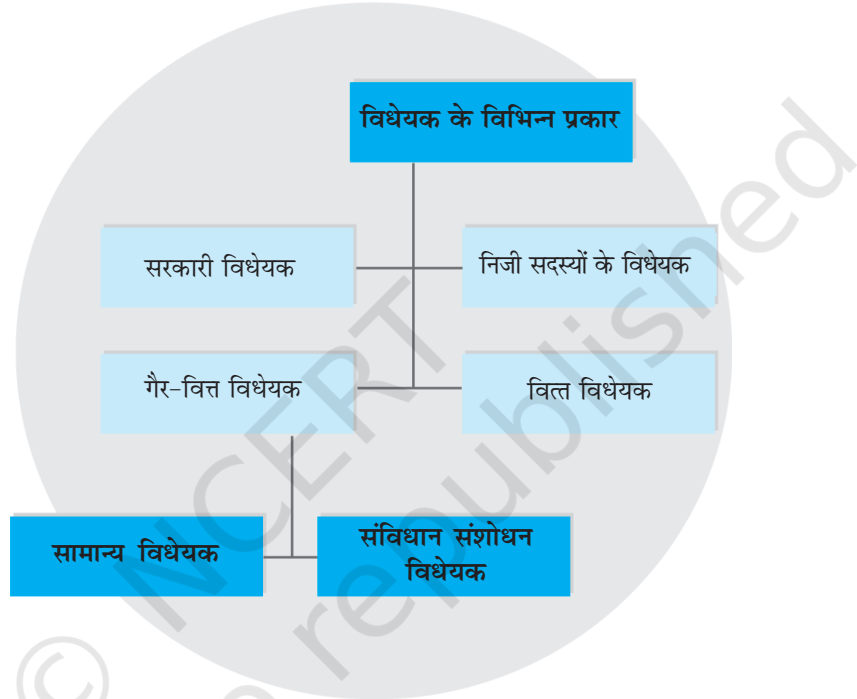
संसद में विधेयक प्रस्तुत किए जाने से पहले ही इस बात पर काफी बहस होती है कि उस विधेयक की क्या ज़रूरत है। कोई राजनीतिक दल अपने चुनावी वायदों को पूरा करने या आगामी चुनावों को जीतने के इरादे से किसी विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए सरकार पर दबाव डाल सकता है। अनेक हित-समूह, मीडिया और नागरिक संगठन भी किसी विधेयक को लाने के लिए सरकार पर दबाव डाल सकते हैं। अतः कानून बनाना केवल एक विधायी प्रक्रिया ही नहीं बल्कि राजनीतिक प्रक्रिया भी है। विधेयक बनाने में अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है, जैसे- कानून को लागू करने के लिए ज़रूरी संसाधनों को कहाँ से जुटाया जाएगा, विधेयक का कितना समर्थन और विरोध होगा, प्रस्तावित कानून से सत्तारूढ़ दल की चुनावी संभावनाओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा आदि। खास तौर पर आज के गठबंधन सरकारों के युग में, सरकार द्वारा प्रस्तावित विधेयक को गठबंधन के सभी घटक दलों का भी समर्थन प्राप्त होना चाहिए। इन व्यावहारिक बातों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कानून बनाने का निर्णय लेने से पहले मंत्रिमंडल इन सभी बातों पर विचार करता है।

एक बार जब मंत्रिमंडल उस नीति को स्वीकृति दे देता है जिस पर कानून आधारित होता है, तब विधेयक का प्रारूप बनाने का कार्य शुरू होता है। विधेयक जिस मंत्रालय से संबद्ध होता है, वही मंत्रालय उसका प्रारूप बनाता है। उदाहरण के लिए, लड़कियों के विवाह की उम्र यदि 18 वर्ष से बढ़ा कर 21 वर्ष करनी है, तो इसका प्रारूप विधि मंत्रालय बनाएगा। इसमें महिला और बाल कल्याण मंत्रालय की भी भागीदारी हो सकती है।

संसद के किसी भी सदन – लोक सभा या राज्य सभा में कोई भी सदस्य इस विधेयक को पेश कर सकता है (जिस विषय का विधेयक हो उस विषय से जुड़ा मंत्री ही अकसर विधेयक पेश करता है)। किसी धन विधेयक को केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। लोक सभा में पारित होने के बाद उसे राज्य सभा में भेज दिया जाता है।

विधेयकों पर विचार-विमर्श अधिकतर संसदीय समितियों में होता है। समिति की सिफारिशों को सदन को भेज दिया जाता है। इन समितियों में सभी संसदीय दलों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। इसी कारण इन समितियों को 'लघु विधायिका' भी कहते हैं। यह कानून निर्माण की प्रक्रिया का दूसरा चरण है। तीसरे और अंतिम चरण में विधेयक पर मतदान होता है। जब कोई सामान्य विधेयक एक सदन द्वारा पारित कर दिया जाता है तब उसे दूसरे सदन में भेज दिया जाता है; दूसरे सदन में भी वह इसी प्रक्रिया से गुजरता है।

जैसा आप जानते हैं कि किसी विधेयक को लागू होने के लिए इसका दोनों सदनों में पास होना ज़रूरी है। लेकिन, यदि प्रस्तावित विधेयक पर दोनों सदनों के बीच मतभेद हों तो उसे संसद के संयुक्त अधिवेशन के माध्यम से सुलझाने की कोशिश की जाती है। पहले जब कभी भी ऐसे मतभेदों को सुलझाने के लिए संसद का संयुक्त अधिवेशन बुलाया गया, निर्णय हमेशा ही लोक सभा के पक्ष में गया है।

लेकिन धन विधेयक के मामले में, राज्य सभा उसे या तो स्वीकार कर सकती है या संशोधन प्रस्तावित कर सकती है, लेकिन वह धन विधेयक को अस्वीकार नहीं कर सकती है। यदि राज्य सभा 14 दिनों तक उस पर कोई निर्णय न ले तो उसे राज्य सभा के द्वारा पारित मान लिया जाता है। विधेयक के बारे में राज्य सभा द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को लोक सभा मान भी सकती है और नहीं भी।

ठीक है! बहस नहीं करते हैं। बात को आपसी सहमति से सुलझाते हैं।

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

तुम विधेयक का समर्थन करना और मैं उसका विरोध करूँगा।

अनुच्छेद 109–

धन विधेयकों के संबंध में विशेष प्रक्रिया-1

धन विधेयक राज्य सभा

में पेश नहीं किया जाएगा।

जब कोई विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है तब उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद वह विधेयक कानून बन जाता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

कानून बनाने की विधि के अध्ययन के बाद, क्या आपको लगता है कि संसद विधेयकों पर विस्तृत चर्चा के लिए पर्याप्त समय दे सकती है? यदि नहीं; तो इस समस्या के समाधान के लिए आप क्या सुझाव देंगे।

संसद कार्यपालिका को कैसे नियंत्रित करती है?

जिस दिल या दलों के गठबंधन को लोकसभा में बहुमत हासिल होता है उसी के सदस्यों को मिलाकर संसदीय लोकतंत्र में कार्यपालिका बनती है। संभव है कि बहुमत की ताकत पाकर यह कार्यपालिका अपनी शक्तियों का मनमाना प्रयोग करने लगे। ऐसी स्थिति में संसदीय लोकतंत्र मंत्रिमंडल को तानाशाही में बदल सकता है जिसमें मंत्रिमंडल जो कहेगा सदन को वही मानना पड़ेगा। जब संसद सक्रिय और सचेत होगी, तभी वह कार्यपालिका पर नियमित और प्रभावी नियंत्रण रख सकेगा। संसद अनेक विधियों का प्रयोग कर कार्यपालिका को नियंत्रित करती है। लेकिन इसके लिए ज़रूरी है कि सांसदों और विधायकों को जनप्रतिनिधियों के रूप में प्रभावी और निर्भीक रूप से काम करने की शक्ति और स्वतंत्रता हो। उदाहरण के

लिए, विधायिका में कुछ भी कहने के बावजूद किसी सदस्य के विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। इसे संसदीय विशेषाधिकार कहते हैं। विधायिका के अध्यक्ष को संसदीय विशेषाधिकार के हनन के मामले में अंतिम निर्णय लेने की शक्ति होती है।

ऐसे विशेषाधिकारों का उद्देश्य यह है कि सांसद और विधायक अपनी जनता का ठीक से प्रतिनिधित्व कर सकें और कार्यपालिका पर प्रभावी नियंत्रण रख सकें। संसद यह नियंत्रण कैसे करती है? वह किन साधनों का प्रयोग करती है? क्या कार्यपालिका की ज़्यादतियों पर संसदीय नियंत्रण सफल है?

संसदीय नियंत्रण के साधन

संसदीय लोकतंत्र में विधायिका अनेक स्तरों पर कार्यपालिका की जवाबदेही को सुनिश्चित करने का काम करती है। यह काम नीति-निर्माण, कानून या नीति को लागू करने तथा कानून या नीति के लागू होने की बाद वाली अवस्था यानि किसी भी स्तर पर किया जा सकता है। विधायिका यह काम कई तरीकों से करती है –

- बहस और चर्चा
- कानूनों की स्वीकृति या अस्वीकृति
- वित्तीय नियंत्रण
- अविश्वास प्रस्ताव

बहस और वाद-विवाद–कानून निर्माण करने की प्रक्रिया में विधायिका के सदस्यों को कार्यपालिका द्वारा बनाई गई नीतियों और उसके क्रियान्वयन के तरीकों पर बहस करने का अवसर मिलता है। विधेयकों पर परिचर्चा के अतिरिक्त, सदन में सामान्य वाद-विवाद के दौरान भी विधायिका को कार्यपालिका पर नियंत्रण करने का अवसर मिल सकता है। ऐसे कुछ अवसर निम्न हैं– **प्रश्न काल**–संसद के अधिवेशन के समय प्रतिदिन 'प्रश्नकाल' आता है जिसमें मंत्रियों को सदस्यों के तीखे प्रश्नों का जवाब देना पड़ता है; **शून्यकाल**–इसमें सदस्य किसी भी महत्त्वपूर्ण मुद्दे को उठा सकते हैं पर मंत्री उसका उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं है और लोकहित के मामले में **आधे घंटे की चर्चा और स्थगन-प्रस्ताव** आदि।

इतने सारे 'स्टिंग ऑपरेशनों' के बाद क्या मंत्री अब भी कहीं भी कुछ भी बोलने को स्वतंत्र हैं?

'प्रश्नकाल' सरकार की कार्यपालिका और प्रशासकीय एजेंसियों पर निगरानी रखने का सबसे प्रभावी तरीका है। संसद के सदस्यों ने प्रश्नकाल में गहरी

मंत्री होना बड़ा कठिन काम है। यह तो रोज एक इम्तहान देने जैसा है।

रूचि दिखाई है और इस समय सदन में सबसे ज़्यादा उपस्थिति रहती है। ज़्यादातर प्रश्न लोक-अभिहित के विषयों जैसे मूल्य वृद्धि, अनाज की उपलब्धता, समाज के कमज़ोर वर्गों के विरुद्ध अत्याचार, दंगे, कालाबाज़ारी आदि पर सरकार से सूचनाएँ माँगने के लिए होते हैं। इसमें सदस्यों को सरकार की आलोचना करने तथा अपने निर्वाचन क्षेत्र की समस्याओं को उठाने का अवसर मिलता है। प्रश्नकाल के दौरान वाद-विवाद इतने तीखे हो जाते हैं कि अनेक सदस्यों द्वारा अपनी बात रखने के लिए प्राय: ऊँची आवाज़ में बोलना, अध्यक्ष के आसन के पास चले जाना तथा सदन से बहिर्गमन करने जैसी घटनाएँ देखी जा सकती हैं। इससे सदन का बहुत समय बर्बाद हो जाता है। लेकिन इसी के साथ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये सभी कदम सरकार से रियायत प्राप्त करने के राजनीतिक तरीके हैं और इससे कार्यपालिका का उत्तरदायित्व सुनिश्चित होता है।

कानूनों की स्वीकृति या अस्वीकृति

कानूनों को मंजूरी देने या नामंजूर करने का अधिकार भी संसद के पास होता है। इसके अधिकार के द्वारा भी संसद कार्यपालिका का नियंत्रण करती है। कोई भी विधेयक संसद की स्वीकृति के बाद ही कानून बन पाता है। जिस सरकार को विधायिका में मन-माफिक बहुमत होता है, उसके लिए संसदीय स्वीकृति प्राप्त करना कठिन नहीं। लेकिन यह मान कर नहीं चला जा सकता है कि यह स्वीकृति मिल ही जाएगी। इस सहमति के लिए शासक दल या गठबंधन के विभिन्न सदस्यों अथवा सरकार और विपक्ष के बीच गंभीर मोल-तोल और समझौते होते हैं। यदि सरकार के पास लोक सभा में तो बहुमत हो पर राज्य सभा में न हो (जैसा कि 1977 में जनता पार्टी और 2000 में राजग सरकारों के दौरान हुआ), तब संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए सरकार को काफी रियायतें देनी पड़ती हैं। अनेक विधेयकों मसलन लोकपाल विधेयक, आतंकवाद निरोधक विधेयक (2000)- को राज्य सभा ने अस्वीकृत कर दिया।

वित्तीय नियंत्रण

जैसा पहले कहा जा चुका है, सरकार के कार्यक्रमों को लागू करने के लिए वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था बजट के द्वारा की जाती है। संसदीय स्वीकृति के लिए बजट बनाना और उसे पेश करना सरकार की संवैधानिक जिम्मेदारी है। इस जिम्मेदारी के कारण विधायिका को कार्यपालिका के

'खजाने' पर नियंत्रण करने का अवसर मिल जाता है। सरकार के लिए संसाधन स्वीकृत करने से विधायिका मना कर सकती है। ऐसा इसलिए नहीं हो पाता है क्योंकि कार्यपालिका को विधायिका में बहुमत प्राप्त होता है। फिर भी, धन स्वीकृत करने से पहले लोक सभा सरकार द्वारा धन माँगने के कारणों पर चर्चा कर सकती है। वह भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक और संसद की लोक-लेखा समिति की रिपोर्ट के आधार पर धन के दुरूपयोग के मामलों की जाँच कर सकती है। लेकिन संसदीय नियंत्रण का एकमात्र उद्देश्य सरकारी धन के सदुपयोग को सुनिश्चित करना नहीं होता। वित्तीय नियंत्रण द्वारा विधायिका सरकार की नीतियों पर भी नियंत्रण करती है।

अविश्वास प्रस्ताव

संसद द्वारा कार्यपालिका को उत्तरदायी बनाने का सबसे सशक्त हथियार 'अविश्वास प्रस्ताव' है। लेकिन जब तक सरकार को अपने दल अथवा सहयोगी दलों का बहुमत प्राप्त हो तब तक सरकार को हटाने की सदन की यह शक्ति वास्तविक कम, काल्पनिक ज़्यादा होती है।

लेकिन, सन् 1989 के बाद से अपने प्रति सदन के अविश्वास के कारण अनेक सरकारों को त्यागपत्र देना पड़ा। इनमें से प्रत्येक सरकार ने लोक सभा का विश्वास खोया क्योंकि वह अपने गठबंधन के सहयोगी दलों का समर्थन बनाए न रख सकी।

इस प्रकार, संसद कार्यपालिका को प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर सकती है और एक उत्तरदायी सरकार का होना सुनिश्चित कर सकती है। परंतु इसके लिए ज़रूरी है कि सदन के पास पर्याप्त समय हो, सदस्य बहस में रुचि रखते हों और उसमें प्रभावशाली ढंग से भाग लें और सरकार तथा विपक्ष में आपस में समझौता करने की इच्छा हो। पिछले दो दशकों में लोक सभा और राज्य विधान सभाओं के अधिवेशनों तथा इनमें होने वाली बहस पर खर्च किए जा रहे समय में उत्तरोत्तर गिरावट आई है। इसके अतिरिक्त, संसद के दोनों सदनों में गणपूर्ति (कोरम) का अभाव और विपक्ष द्वारा अधिवेशनों के बहिष्कार जैसी समस्याएँ भी रही हैं, जिससे वाद-विवाद के द्वारा कार्यपालिका को नियंत्रित करने की सदन की शक्ति प्रभावित हुई है।

खुद करें—खुद सीखें

दूरदर्शन पर संसद के 'आँखों देखे प्रसारण' को तीन दिन तक लगातार देखिए। या इस संबंध में समाचार पत्रों में प्रकाशित खबरों को तीन दिनों तक एकत्र करें। इससे एक वालपेपर/पोस्टर तैयार करें। ऐसा करने में उन मुद्दों पर ध्यान दें जिन पर बहस हुई, अध्यक्ष की क्या भूमिका रही, कैसे प्रश्न पूछे गए, राजनीतिक दलों तथा आपके निर्वाचन क्षेत्र

के प्रतिनिधि की क्या भूमिका रही, वाद–विवाद में उठे मुद्दों की प्राकृति कैसी थी–क्या वे सभी राष्ट्रीय थे या क्षेत्रीय?

इरफ़ान

सरकार से विरोध दर्ज कराने का एक आम तरीका है सदन से 'वाकआउट' करना, क्या यह काम ज़रूरत से ज़्यादा हुआ है?

संसदीय समितियाँ क्या करती हैं?

विभिन्न विधायी कार्यों के लिए समितियों का गठन संसदीय कामकाज का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। ये समितियाँ केवल कानून बनाने में ही नहीं, वरन् सदन के दैनिक कार्यों में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। चूँकि संसद केवल अपने अधिवेशन के दौरान ही बैठती है इसलिए उसके पास अत्यंत सीमित समय होता है। किसी कानून को बनाने के लिए उससे जुड़े विषय का गहन अध्ययन करना पड़ता है। इसके लिए उस पर ज़्यादा ध्यान और समय देने की ज़रूरत पड़ती है। इसके अतिरिक्त और भी महत्त्वपूर्ण कार्य होते हैं जैसे विभिन्न मंत्रालयों की अनुदान माँगों का अध्ययन, विभिन्न विभागों के द्वारा किए गए खर्चों की जाँच, भ्रष्टाचार के मामलों की पड़ताल आदि। संसदीय समितियाँ यह सब कार्य करती हैं। 1983 से भारत में संसद की स्थायी समितियों की प्रणाली विकसित की गई है। विभिन्न विभागों से संबंधित ऐसी 20 समितियाँ हैं। स्थायी समितियाँ विभिन्न विभागों के कार्यों, उनके बजट, खर्चे, तथा उनसे संबंधित विधेयकों–की देखरेख करती हैं।

स्थायी समितियों के अतिरिक्त, अपने देश में संयुक्त संसदीय समितियों का भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन समितियों में संसद के दोनों सदनों के सदस्य होते हैं। संयुक्त संसदीय समितियों का गठन किसी विधेयक पर संयुक्त चर्चा अथवा वित्तीय अनियमितताओं की जाँच के लिए किया जा सकता है।

समितियों की इस व्यवस्था ने संसद का कार्यभार हल्का कर दिया है। अनेक महत्त्वपूर्ण विधेयकों को

समितियों को भेजा गया। संसद ने समितियों द्वारा किए गए काम में छिट-पुट बदलाव करके उसको मंजूरी दे दी है। कानूनी नज़रिए से देखें तो संसद की मंजूरी के बिना तो बजट पास हो सकता है और न ही कोई विधेयक कानून बन सकता है। किंतु, यह बात भी सच है कि समितियों द्वारा दिए गए सुझावों को संसद शायद ही कभी नामंजूर करती है।

जहाँ तक विधायिका की प्रकृति का सवाल है, तो उस पर कुछ प्रतिक्रिया बाधाएँ देखें तो विधायिका पर कोई बाध्यता नहीं है, संसद अथवा विधायिका की संप्रभुता पर कोई सीमा नहीं है। ...

एन. वी. गाडगिल
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 659, 18 नवंबर 1949

संसद स्वयं को कैसे नियंत्रित करती है?

हम पहले पढ़ चुके हैं कि संसद बहस-मुबाहिसे का मंच है। बहस-मुबाहिसे के ज़रिए ही संसद अपने सभी ज़रूरी काम को अंजाम देती है। यह सार्थक और अनुशासित ढंग से होना ज़रूरी है ताकि संसद की कार्यवाही आसानी से चले और उसकी गरिमा बनी रहे। खुद संविधान में संसद की कार्यवाही को सुचारु ढंग से चलने के लिए प्रावधान बनाए गए हैं। सदन का अध्यक्ष विधायिका की कार्यवाही के मामले में सर्वोच्च अधिकारी होता है।

अच्छा! तो कानून बनाने वालों पर भी कुछ कानून लागू होते हैं?

इरफ़ान

कार्टून बूझें

इन सदस्यों ने 'वाकआउट' नहीं किया है। इन्हें अध्यक्ष ने बाहर निकाला है। क्या ऐसी स्थिति अकसर आती है?

मुझे समझ में नहीं आता कि नेता अपना दल क्यों बदलते हैं? क्या वे कभी अपनी उस पार्टी में लौट कर आते भी हैं जो उन्होंने छोड़ी थी?

एक और तरीके से भी सदन का अध्यक्ष अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करता है। आपने शायद दलबदल निरोधक कानून के बारे में सुना होगा। विधायिका के अधिकतर सदस्य किसी न किसी दल के टिकट पर चुने जाते हैं। यदि चुने जाने के बाद वे अपनी पार्टी छोड़ना चाहें तो क्या होगा? स्वतंत्रता के काफी समय बाद तक यह समस्या बनी रही। अंततः दलों में इस बात पर आम सहमति बनी कि किसी दल के टिकट पर निर्वाचित विधायक या सांसद को दलबदल करने से रोका जाना चाहिए। इसके लिए 1985 में संविधान का 52वाँ संशोधन किया गया। इसे 'दलबदल निरोधक कानून' कहते हैं। इसे बाद में 91वें संविधान संशोधन द्वारा दुबारा संशोधित किया गया। सदन का अध्यक्ष दलबदल से संबंधित विवादों पर अंतिम निर्णय लेता है। यदि यह सिद्ध हो जाय कि किसी सदस्य ने 'दलबदल' किया है, तो उसकी सदन की सदस्यता समाप्त हो

जाती है। इसके अतिरिक्त, ऐसे दलबदलू को किसी भी राजनीतिक पद (जैसे मंत्री) के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाता है।

दलबदल क्या है? यदि कोई सदस्य अपने दल के नेतृत्व के आदेश के बावजूद सदन में उपस्थित न हो या दल के निर्देश के विपरीत सदन में मतदान करे अथवा स्वेच्छा से दल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दे तो उसे 'दलबदल' कहते हैं।

विगत 20 वर्षों का अनुभव बताता है कि 'दलबदल निरोधक कानून' दलबदल को रोकने में सफल नहीं हुआ। लेकिन इसने किसी दल के प्रधान नेता और अध्यक्षों को विधायिका के सदस्यों के विरुद्ध अतिरिक्त शक्तियाँ प्रदान की हैं।

निष्कर्ष

क्या आपने संसद की कार्यवाही का टेलीविजन पर 'आँखों देखा' प्रसारण देखा है? आपको सदन में इन्द्रधनुष की तरह रंग-बिरंगी वेश-भूषाएँ दिखाई देगीं जो देश के विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। सदन की कार्यवाही के दौरान सदस्य भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हैं। वे विभिन्न जाति, धर्म और संप्रदायों से आते हैं। वे प्रायः एक-दूसरे का प्रबल विरोध करते हैं। अनेक अवसरों पर ऐसा लगता है कि वे देश का समय और धन बर्बाद कर रहे हैं। लेकिन पीछे इस अध्याय में आपने देखा कि यही सांसद कार्यपालिका को प्रभावी ढंग से नियंत्रित भी कर सकते हैं। वे हमारे समाज के विभिन्न वर्गों के हितों की भी अभिव्यक्ति कर सकते हैं। अपनी खास बनावट के कारण संसद सरकार के सभी अंगों में सबसे ज़्यादा प्रतिनिध्यात्मक है। संसद में विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि वाले सदस्यों की मौजूदगी होती है। इससे संसद ज़्यादा प्रतिनिध्यात्मक हो जाती है। इस कारण संसद जनता की इच्छाओं के अनुरूप चलती और जनता की आकांक्षाओं के प्रति संवेदनशील होकर काम करती है।

संसदीय लोकतंत्र में जनता की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली यह विधायिका अत्यंत शक्तिशाली और उत्तरदायी संस्था है। यही संसद की लोकतांत्रिक शक्ति का आधार है।

प्रश्नावली

1. आलोक मानता है कि किसी देश को कारगर सरकार की ज़रूरत होती है जो जनता की भलाई करे। अतः यदि हम सीधे-सीधे अपना प्रधानमंत्री और मंत्रिगण चुन लें और शासन का काम उन पर छोड़ दें, तो हमें विधायिका की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। क्या आप इससे सहमत हैं? अपने उत्तर का कारण बताएँ।

2. किसी कक्षा में द्वि-सदनीय प्रणाली के गुणों पर बहस चल रही थी। चर्चा में निम्नलिखित बातें उभरकर सामने आयीं। इन तर्कों को पढ़िए और इनसे अपनी सहमति-असहमति के कारण बताइए।
   (क) नेहा ने कहा कि द्वि-सदनीय प्रणाली से कोई उद्देश्य नहीं सधता।
   (ख) शमा का तर्क था कि राज्य सभा में विशेषज्ञों का मनोनयन होना चाहिए।
   (ग) त्रिदेव ने कहा कि यदि कोई देश संघीय नहीं है, तो फिर दूसरे सदन की ज़रूरत नहीं रह जाती।

3. लोकसभा कार्यपालिका को राज्यसभा की तुलना में क्यों कारगर ढंग से नियंत्रण में रख सकती है?

4. लोकसभा कार्यपालिका पर कारगर ढंग से नियंत्रण रखने की नहीं बल्कि जनभावनाओं और जनता की अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति का मंच है। क्या आप इससे सहमत हैं? कारण बताएँ।

5. नीचे संसद को ज़्यादा कारगर बनाने के कुछ प्रस्ताव लिखे जा रहे हैं। इनमें से प्रत्येक के साथ अपनी सहमति या असहमति का उल्लेख करें। यह भी बताएँ कि इन सुझावों को मानने के क्या प्रभाव होंगे?
   (क) संसद को अपेक्षाकृत ज़्यादा समय तक काम करना चाहिए।
   (ख) संसद के सदस्यों की सदन में मौजूदगी अनिवार्य कर दी जानी चाहिए।
   (ग) अध्यक्ष को यह अधिकार होना चाहिए कि सदन की कार्यवाही में बाधा पैदा करने पर सदस्य को दंडित कर सकें।

6. आरिफ यह जानना चाहता था कि अगर मंत्री ही अधिकांश महत्त्वपूर्ण विधेयक प्रस्तुत करते हैं और बहुसंख्यक दल अकसर सरकारी विधेयक को पारित कर देता है, तो फिर कानून बनाने की प्रक्रिया में संसद की भूमिका क्या है? आप आरिफ को क्या उत्तर देंगे?

7. आप निम्नलिखित में से किस कथन से सबसे ज़्यादा सहमत हैं? अपने उत्तर का कारण दें।
   (क) सांसद/विधायकों को अपनी पसंद की पार्टी में शामिल होने की छूट होनी चाहिए।
   (ख) दलबदल विरोधी कानून के कारण पार्टी के नेता का दबदबा पार्टी के सांसद/विधायकों पर बढ़ा है।
   (ग) दलबदल हमेशा स्वार्थ के लिए होता है और इस कारण जो विधायक/सांसद दूसरे दल में शामिल होना चाहता है उसे आगामी दो वर्षों के लिए मंत्री-पद के अयोग्य करार कर दिया जाना चाहिए।

8. डॉली और सुधा में इस बात पर चर्चा चल रही थी कि मौजूदा वक्त में संसद कितनी कारगर और प्रभावकारी है। डॉली का मानना था कि भारतीय संसद के कामकाज में गिरावट आयी है। यह गिरावट एकदम साफ दिखती है क्योंकि अब बहस-मुबाहिसे पर समय कम खर्च होता है और सदन की कार्यवाही में बाधा उत्पन्न करने अथवा वॉकआउट (बहिर्गमन) करने में ज़्यादा। सुधा का तर्क था कि लोकसभा में अलग-अलग सरकारों ने मुँह की खायी है, धाराशायी हुई हैं। आप सुधा या डॉली के तर्क के पक्ष या विपक्ष में और कौन-सा तर्क देंगे?

9. किसी विधेयक को कानून बनने के क्रम में जिन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है उन्हें क्रमवार सजाएँ।
   (क) किसी विधेयक पर चर्चा के लिए प्रस्ताव पारित किया जाता है।
   (ख) विधेयक भारत के राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है – बताएँ कि वह अगर इस पर हस्ताक्षर नहीं करता/करती है, तो क्या होता है?
   (ग) विधेयक दूसरे सदन में भेजा जाता है और वहाँ इसे पारित कर दिया जाता है।
   (घ) विधेयक का प्रस्ताव जिस सदन में हुआ है उसमें यह विधेयक पारित होता है।
   (ङ) विधेयक की हर धारा को पढ़ा जाता है और प्रत्येक धारा पर मतदान होता है।
   (च) विधेयक उप-समिति के पास भेजा जाता है – समिति उसमें कुछ फेर-बदल करती है और चर्चा के लिए सदन में भेज देती है।
   (छ) संबद्ध मंत्री विधेयक की ज़रूरत के बारे में प्रस्ताव करता है।
   (ज) विधि-मंत्रालय का कानून-विभाग विधेयक तैयार करता है।

10. संसदीय समिति की व्यवस्था से संसद के विधायी कामों के मूल्यांकन और देखरेख पर क्या प्रभाव पड़ता है?